

# भारतीय परिवार प्रणाली उद्भव एवं विकास

Mamta Kumari\*

Research Scholar, Venkateshwar University, Gajraula (UP)

सार - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसी अनुरूप वह अपना जीवन-यापन परिवार, छोटे समूहों अथवा उसके वृहद् रूप, समाज से सम्बद्ध रहकर ही करता है। कोई भी व्यक्ति स्वयं का पूर्ण मूल्यांकन इन इकाइयों से भिन्न रखकर नहीं कर सकता क्योंकि सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं वरन् व्यावसायिक स्तर पर भी भौतिक वस्तुओं का आदान प्रदान भले ही न हो, मात्र विचारों का आदान प्रदान भी एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर निर्भरता को पूर्ण रूपेण स्पष्ट करता है। व्यक्ति का उसके परिवार के सदस्यों जैसे माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन अथवा समाज के अन्य छोटे-छोटे समूहों जैसे मित्र-वर्ग, आस-पड़ोस, धार्मिक समाज आदि के अतिरिक्त व्यावसायिक उद्देश्य से विश्व के अन्य समाजों से भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध रहता है। आज तकनीकी के बहुआयामी विकास ने विश्व के विभिन्न व्यक्तियों तथा समाजों को एक दूसरे के करीब लाने का कार्य किया है तथा एक दूसरे को परस्पर प्रभावित कर उन्हें परिवर्तनशील भी बना रहा है जो प्राचीन भारतीय मनीषियों की उक्ति वसुधैव कुटुम्बकम् को भलीभांति सार्थकता प्रदान करता है। परिवार व्यक्तियों का ऐसा समूह माना जा सकता है जो विवाह और रक्त संबंधों से संगठित होता है। परिवार शब्द के अंग्रेजी पर्याय फेमिली शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द फेमिलस से हुई है जिसका अर्थ है सेवक अथवा नौकर।

कुंजीशब्द : परिवार, समाज, भौतिक वस्तुओं।

-----X-----

## प्रस्तावना

### परिवार

बिना परिवार के समाज का अस्तित्व संभव ही नहीं है। व्यक्ति की जन्म से लेकर मृत्यु तक समस्त गतिविधियाँ परिवार में ही होती हैं।

### परिवार की अवधारणा

सरल शब्दों में यदि कहा जाय तो परिवार समाज की एक छोटी इकाई अथवा समाज का ही एक छोटा स्वरूप है। परिवार मानव-जीवन के प्रारंभ से ही उसके साथ रहा है तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सभी स्तरों पर सांस्कृतिक विकास में अभूतपूर्व योगदान देते हुए नये बच्चे को जन्म देकर मृतप्राय के रिक्त हुए स्थान को भरकर विनाश तथा सृजन की विरोधाभासी अवस्था का अति सुन्दर समन्वय करते हुए समाज की निरन्तरता को कायम रखता रहा है। चार्ल्स कूले इस सन्दर्भ में मानते हैं कि परिवार एक ऐसा प्राथमिक समूह है जिसमें बच्चे के सामाजिक जीवन व आदर्शों का निर्माण होता है। परिवार व्यक्ति के सामाजिकरण का एक प्रमुख साधन भी है। डा. श्री राम शर्मा परिवार की महत्ता के विषय में

लिखते हैं- समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई परिवार होती है। पारिवारिक जीवन के विश्लेषण से समाज के स्वरूप की स्पष्ट झाँकी मिल सकती है।

कालांतर में विभिन्न कारणों से परिवार के मूल स्वरूप, संरचना तथा आदर्शों में परिवर्तन होते रहे हैं। इस परिवर्तन के सन्दर्भ में बर्गस अपनी मताभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं-प्यह अनेक परिवर्तनों को पार करके जटिल सामाजिक संरचना अथवा संस्था के स्थान पर लोचपूर्ण मानवीय संबंध बन गया है।

### अध्ययन का उद्देश्य

- 1) परिवार की सामान्य प्रकृति एवं विशेषताओं पर अध्ययन
- 2) भारतीय परिवार उद्भव एवं विकास पर अध्ययन

### परिवार का उद्भव और विकास

परिवार के उद्भव काल के सन्दर्भ में निश्चित प्रमाणों की अनुपस्थिति के कारण कुछ भी कहा जाना अत्यन्त ही कठिन है। इस अनिश्चितता के कारण अनेको विद्वानों ने अपने-अपने

अनुसार इस संबंध में व्याख्याएँ देने का प्रयास किया है। कुछ परिवार की उत्पत्ति के कारण को व्यक्ति की जैविक आवश्यकता से जोड़ कर देखते हैं तो कुछ इसे व्याख्यायित करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का सहारा लेते हैं। विश्व की कई संस्कृतियों में पारिवारिक व्यवस्था की उत्पत्ति को पौराणिक ग्रंथों एवं कथाओं के आधार पर व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया। उदाहरणार्थ हिन्दू सभ्यता में इसकी उत्पत्ति को पौराणिक कथाओं के परिपेक्ष्य में देखते हुए माना जाता रहा है कि इसका अस्तित्व सृष्टि या मानव की उत्पत्ति के प्रारंभ से ही रहा है जहां सृष्टि के निर्माता ब्रह्मदेव सर्प सैय्या पर पत्नी लक्ष्मी के साथ विराजमान विष्णु की नाभि से पैदा हुए हैं, जो एक परिवार का ही स्वरूप है।

### उद्भव सम्बन्धी सिद्धांत

परिवार के उद्भव एवं विकास सम्बन्धी अध्ययन से संबंध रखने वाले विद्वान तथा पंडित अपनी खोजों तथा विचार क्षमता के अनुरूप चाहे जो भी व्याख्याएँ दें, वास्तविकता यही है कि परिवार के क्रमिक विकास की इतनी लंबी अवधि के पश्चात् उसकी उत्पत्ति के कारण, समय अथवा स्थान के विषय में सटीक रूप से कुछ भी कह पाना लगभग असंभव है। फिर भी इससे संबंधित कई सिद्धांत प्रचलित होने के साथ-साथ कुछ स्तर तक स्वीकार्य भी किए गए हैं। परिवार के उद्भव सम्बन्धी कुछ सिद्धांत निम्नलिखित हैं

#### 1. यौन सिद्धांत

इस सिद्धांत के पक्षधर मार्गन, फेजर तथा ब्रिफाल्ट मानते हैं कि प्रारंभिक अवस्था में परिवार और विवाह का अस्तित्व ही नहीं था। अतः मैथुन के संबंध में कोई रोक-टोक नहीं थी। कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से यौन संबंध स्थापित कर सकता था। इस सिद्धांत को यौन सिद्धांत कहा जाता है। ऐसी परिस्थिती में बच्चे के पिता के बारे में कोई सटीक जानकारी नहीं रहती थी। आज भी विभिन्न संस्कृतियों अथवा समुदायों में व्याप्त कुछ प्रथाएँ इस ओर संकेत देती हैं, मसलन आज भी कुछ आदिवासी समाजों में यौन सम्बन्धी निश्चित नियमों के अभाव में काफी हद तक यौन स्वच्छन्दता व्याप्त है।

#### 2. जीवनशास्त्रीय सिद्धांत

काम संबंधी सिद्धांत को सभी इतिहासकार एक मत से स्वीकार्य नहीं मानते। अतः एव उनकी दृष्टि जीवनशास्त्रीय सिद्धांत की ओर गयी। इस सिद्धांत के अनुसार परिवार के उद्भव का मूल कारण जाति की सुरक्षा, गर्भावस्था में स्त्री तथा प्रसव के पश्चात् बच्चे का एक लंबे अंतराल तक पोषण तथा देख-रेख एवं सुरक्षा की आवश्यकता को माना गया है। इस सिद्धांत को अपना समर्थन देते

हुए श्वेस्ट मार्केश् अपनी मताभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं- परिवार के उद्भव का मूल कारण जाति की सुरक्षा की चिन्ता है। गर्भावस्था में स्त्री का पोषण और प्रसव के बाद बच्चों का लंबे काल तक पोषण करना होता है। पुरुष इस कार्य में शिथिल हो सकता है, लेकिन स्त्री के लिए यह कार्य सुचारू रूप से निभाने के लिए परिवार आवश्यक था। 17 अतः जीवनशास्त्रीय सिद्धांत यौन सिद्धांत की अपेक्षा कुछ हद तक तार्किक जान पड़ता है।

### 3. मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के पक्षधर मानते हैं कि मनुष्य में ज्ञान का विकास करने के स्वाभाविक एवं सहज गुण विद्यमान होने से उसने प्रारंभ में ही पारिवारिक जीवन का निर्माण किया। एक सामान्य तर्क के द्वारा इसे प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है, मसलन एकाकी स्वभाव मानसिक अस्वस्थता की ओर इशारा करता है। जब किसी की मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है, तब वह जीवित होते हुए भी एक मृत-प्राय सा होकर परिवार को छोड़ एकाकी विचरण करता है। उदाहरण के तौर पर एक पागल पशु भी अपना झुंड छोड़कर अकेले ही घूमता है। इस तर्क के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवार के निर्माण में मनोवैज्ञानिक कारण काफी प्रभावी था।

### परिवार के विकास की अवस्थाएँ

परिवार आदिम काल से विकास और विघटन की अनेक अवस्थाओं को पार करता हुआ चला आ रहा है। इसके विकास की अवस्थाओं को मूलतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

#### 1. अग्नि युग (पूर्व वैदिक युग)

प्रारंभिक दौर में प्रत्येक परिवार को घर में अग्नि रखनी पड़ती थी। इसका महत्व इतना अधिक था कि लोग अग्नि से प्रार्थना कर अपने लिए पुत्रों से फलते-फूलते घर की कामना किया करते थे। अग्नि से अपना पारिवारिक संबंध भी जोड़ा जाता था।

#### 2. उत्तर वैदिक युग

यह युग आर्थिक विकास का युग था जिसमें पिता-पुत्र मिलकर परिवार को सम्पन्न बनाते थे। इस युग में पिता को असीमित अधिकार प्राप्त थे जिससे वर्चस्व को लेकर पिता पुत्र में झगड़े होते थे। पारिवारिक सम्पन्नता की वृद्धि के साथ-साथ वर्चस्व को लेकर होने वाले संघर्ष ने परिवार में सदस्यों के विभाजन की समस्या को पैदा किया। परिवार प्रणाली के विघटन का प्रारंभ इसी युग से हुआ। चूंकि गृहस्थ ज्यादातर किसान थे, अतः

समाज में विभाजन का आरंभ होने के बावजूद गृहस्थ समाज में पारिवारिक एकता ही प्रचलित रही।

### परिवार की सामान्य प्रकृति एवं विशेषताएँ

परिवार एक जैविक इकाई है, जिसमें पति तथा पत्नी के मध्य संस्थायीकृत यौन संबंध होते हैं, फलतः जनन की प्रक्रिया से जुड़े होने के कारण इसके सदस्य अन्य किसी समूह की अपेक्षा एक दूसरे से निकटवर्ती संबंधी होते हैं। यही जैविक संबंध परिवार की एक प्रमुख विशेषता भी है। अर्थ, आवास एवं भावनात्मक जुड़ाव के अतिरिक्त परिवार की अन्य विशेषताएँ तथा लक्षण हैं जो उसे अन्य समूहों से भिन्न बनाते हैं। परिवार की कुछ सामान्य विशेषताएँ तथा लक्षण निम्न प्रकार से हैं

#### 1. विवाह-सम्बन्ध

एक परिवार का जन्म समाज द्वारा स्वीकृत स्त्री-पुरुष के वैवाहिक सम्बन्ध से होता है। फलतः उनके मध्य विस्थापित होने वाले यौन सम्बन्ध के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली संतान को भी समाज बड़ी ही सहजता के साथ स्वीकार करता है। यह संतान अपने माता-पिता के साथ उस परिवार का सदस्य बनती है। वह विवाह-सम्बन्ध आजीवन बना रहता है जब तक कि मृत्यु अथवा विवाह-विच्छेद के कारण टूट ना जाये।

#### 2. आर्थिक व्यवस्था

हर परिवार में जीविकोपार्जन हेतु अनिवार्य वस्तुओं, साधनों की प्राप्ति हेतु कोई न-कोई आर्थिक व्यवस्था अवश्य मौजूद होती है ताकि उसके द्वारा परिवार के सदस्यों का पालन पोषण हो सके। अक्सर घर का मुखिया कोई न कोई व्यवसाय करता है और परिवार के लिए धन अर्जित करता है।

#### 3. वंश-नाम की व्यवस्था

प्रत्येक परिवार किसी-न-किसी नाम से अवश्य जाना जाता है। हर परिवार में वंश-नाम निश्चित करने का कोई-न-कोई विशेष नियम हुआ करता है जिसके अनुसार एक परिवार के बच्चों का उपनाम या वंश-नाम निधीरित होता है जो उस परिवार के वंशजों को पहचानने में सहायक होता है। यह वंश नाम अपनी-अपनी प्रथाओं के अनुरूप मातृवंशीय अथवा पितृवंशीय हो सकता है। सामान्यतः स्त्री पति के संबंधियों के साथ रहने के लिए जाती है परन्तु ऐसे भी कुछ उदाहरण पाये गये हैं जहाँ पितृस्थानीय तथा मातृस्थानीय दोनों प्रणालियों में वार्षिक परिवर्तन होता रहता है।

### परिवार का वर्गीकरण

परिवार का स्वरूप प्रत्येक समाजों में भिन्न होता है। प्रत्येक समाज में ही नहीं बल्कि एक ही समाज के अलग प्रान्तीय विस्तार में भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं जिसके प्रभाव से सामाजिक संस्थाएँ भी अछूती नहीं रह सकतीं, परिणामतः परिवार का स्वरूप भी एक समान नहीं होता। साथ-साथ यह भी अनिवार्य नहीं है कि एक समाज के किसी क्षेत्रीय विस्तार में मात्र एक ही प्रकार के परिवार पाये जायें। एक ही समाज में, एक ही क्षेत्र में इनकी विविधता भली-भाँति देखी जा सकती है। अतः परिवार के अनेकों भेद विश्व के विभिन्न समाजों में देखे जा सकते हैं, जिन्हें अनेकों आधार पर एक-दूसरे से पृथक् कर उन्हें वर्गीकृत किया जा सकता है।

#### पितृस्थानीय परिवार

प्रत्येक परिवार के सदस्यों को रहने के लिए निवास स्थान की आवश्यकता होती है जिसका निश्चय उस समूह में प्रचलित नियम के अनुसार ही होता है। जिस नियमानुसार विवाहोपरांत पत्नी अपने पति के घर उसके सगे-संबंधियों के साथ रहने के लिए जाती है उसे पितृस्थानीय परिवार कहते हैं। हमारे समाज में बहुतायत परिवार का यही स्वरूप देखने को मिलता है क्योंकि इनमें बच्चे अपनी माता के साथ अपने पिता के घर या परिवार में रहते हैं। इसके अतिरिक्त भारत की अनेक जनजातियों या आदिवासियों जैसे भील, खरिया आदि में भी सामान्यतः पितृस्थानीय परिवार ही पाये जाते हैं।

#### मातृस्थानीय परिवार

इस प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था में पत्नी अपने पति के अधीन न रहकर सम्पूर्ण परिवार की स्वामिनी होती है। पति अपना घर छोड़कर पत्नी के घर उसके परिवार, रिस्तेदारों के साथ रहने जाता है तथा पूरी सम्पत्ति पर पत्नी का अधिकार होता है। मार्गन तथा मैकलेन इसे परिवार का आरंभिक रूप मानते हैं, हालांकि समाज में इसके अस्तित्व को लेकर सन्देह भी व्यक्त किया जाता रहा है।

#### अधिकार अथवा सत्ता के आधार पर

##### 1. पैतृक या पितृसत्तात्मक परिवार

ऐसे परिवारों में परिवार संबंधी विषयों पर निर्णय लेने का अधिकार या सत्ता पिता अथवा पुत्र के हाथ में होता है, अतः इसे

पितृसत्तात्मक परिवार कहते हैं। भारत के सामान्यतः सभी समाजों में इस प्रकार का परिवार पाया जाता है।

## 2. मातृक या मातृसत्तात्मक परिवार

मातृसत्तात्मक परिवार में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकार स्त्री-वर्ग को प्राप्त होता है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पुरुष की पूर्ण स्पेण उपेक्षा की जाती हो, वरन् उन्हें भी पुरुषोचित समस्त अधिकार प्रदत्त किया जाता है।

## वैवाहिक-रचना के आधार पर

### 1. एक-विवाही परिवार

इस तरह के परिवार में एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है। परिवार के इस प्रारूप को शैक-विवाही परिवार कहा जाता है। आधुनिक भारतीय परिवारों में इसकी बहुतायत होने के साथ-साथ सर्व-स्वीकृति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है।

### 2. बहु-विवाही परिवार

किसी पुरुष का विवाह एक से अधिक स्त्रियों अथवा किसी स्त्री का विवाह एक से अधिक पुरुषों के साथ होने के कारण उत्पन्न होने वाले परिवार को श्बहु-विवाही परिवार कहा जाता है। इसके भी दो भेद हैं- (अ) एक स्त्री एक से अधिक पुरुषों से विवाह कर जिस परिवार का निर्माण करती है उसे श्बहुपति-विवाही परिवार कहा जाता है। (ब) एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह कर जिस परिवार का निर्माण करती है उसे श्बहुपत्नी-विवाही परिवार कहा जाता है। इस प्रकार के परिवार भारत के आदिवासी समुदायों जैसे- गोंड, नागा, बैगा आदि में पाये जाते हैं।

## परिवार के कार्य

परिवार के कार्यों को अलग-अलग समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने विचारों के अनुरूप विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया है। मसलन श्लुंडबर्ग के अनुसार परिवार के मूल चार कार्य हैं- काम व्यवहार का नियमन तथा संतानोत्पत्ति, बच्चों की देखभाल तथा उनका पालन-पोषण, सहयोग एवं श्रम-विभाजन, प्राथमिक समुह-संतुष्टियाँ। वहीं आगबर्न ने परिवार के कार्यों को छः भागों में विभक्त किया है- स्नेह-सम्बन्धी, आर्थिक, मनोरंजनात्मक, सुरक्षात्मक, धार्मिक तथा शैक्षणिक।

## अनिवार्य कार्य

### 1. काम

आवश्यकता की तुष्टि कई समाजशास्त्री इसे परिवार का सर्वप्रथम तथा अनिवार्य कार्य मानते हैं। शैवलोकश के अनुसार- प्लैंगिक मधुरता की असफलता वैवाहिक बंधन को शिथिल बना देती है<sup>2</sup>, हालांकि कई समाज विवाहपूर्व तथा अतिरिक्त विवाह संभोग को मान्यता देते हैं, परन्तु सामान्यतः अधिकतर समाज इसे स्वीकृति प्रदान नहीं करते।

### 2. संतानोत्पत्ति तथा पालन-पोषण

प्रजाति की निरंतरता को बनाये रखने हेतु स्त्री का गर्भ धारण कर बच्चे को जन्म देना तथा उसके उचित पालन-पोषण को भी बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। हालांकि सन्तान की उत्पत्ति परिवार के बिना भी हो सकती है, परन्तु अधिकतर समाज अवैध सन्तान को मान्यता नहीं देते। सन्तानोत्पत्ति तथा उनके पालन-पोषण हेतु परिवार को एक सर्वोत्तम संस्था माना गया है।

### 3. घर की व्यवस्था

जीवन यापन हेतु अनिवार्य शारीरिक श्रम के विभाजन के अतिरिक्त मानव-प्राणियों के स्नेह के आवश्यकता की पूर्ति हेतु भी परिवार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। अधिकांश समाज स्नेहमयी अनुक्रिया हेतु पूर्ण रूप से परिवार पर निर्भर हैं।

## भारत में परिवार

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था का अध्ययन मात्र इसीलिए अनिवार्य नहीं है क्योंकि हम भारतीय हैं, बल्कि इसलिए भी अनिवार्य है क्योंकि यह अन्य पाश्चात्य पारिवारिक व्यवस्था से कई मायनों में भिन्न है। भारतीय परिवार में पति-पत्नी के अतिरिक्त बच्चे, चाचा, पौत्र आदि भी होते हैं। इसमें पुत्र विवाहोपरांत पिता से अलग नहीं रहता, अपितु उनके साथ ही जीवन-यापन करता है। बच्चा जन्म से ही पारिवारिक सम्पत्ति में भागीदार बन जाता है। अतः यह एक प्रकार का सामाजिक समूह है। परिवार की यह व्यवस्था शस्युक्त परिवार के नाम से जानी जाती है। श्री आई पी देसाई इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं- 'पहम ऐसे घराने को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें पीढ़ी की गहराई परिवार की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है तथा जिसके सदस्य एक-दूसरे से सम्पत्ति, आय एवं पारस्परिक अधिकारों एवं दायित्वों के आधार पर संबंधित होते हैं।'<sup>22</sup>

विशाल आकार, संयुक्त संपत्ति, साझा निवास इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। संयुक्त परिवार एक उत्पादक इकाई के रूप में भी

कार्य करता है जो प्रायः कृषक परिवारों में देखने मिलता है। परिवार के सभी सदस्य एकजुट हो खेतों में कार्य करते हैं, जिससे श्रम का विभाजन होता है। साझा धर्म भी इसकी एक विशेषता है, अर्थात् परिवार के सभी सदस्य सामान्यतः समान धर्म में विश्वास करते हैं तथा समान देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इन परिवारों में मुखिया को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों के समान अधिकार होते हैं। संयुक्त परिवार के गुणों की बात करें तो यह परिवार के हर सदस्य को जीविका प्रदान कर, आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करता है। सदस्यों की योग्यता के अनुरूप श्रम का विभाजन कर दिया जाता है। इस प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था एक सामाजिक बीमे की तरह है जिसमें परिवार के बच्चों, बूढ़ों, विधवाओं का भी सही भरण-पोषण संभव है। यह व्यवस्था अन्य सामाजिक गुणों जैसे बलिदान, स्नेह, सहयोग आदि का सर्जन करती है।

### हिन्दी साहित्य और परिवार

किसी भी रचना की विषय-वस्तु एक पारिवारिक व्यवस्था की कल्पना के बिना पूर्ण नहीं हो सकती। साहित्य की रचना करते हुए रचनाकार जाने अनजाने परिवार के किसी न किसी रूप को अपनी रचना के केन्द्र में स्थान अवश्य देता है। परिवार का वह स्वरूप उस रचना के काल में अंशतः अथवा पूर्णरूपेण अस्तित्व में भले ही न हो, परन्तु कुछ हद तक विद्यमान परिवारों के प्रारूप का प्रतिबिम्ब तो अवश्य ही होता है। चाहे वह वैदिक काल हो या आज की रचनाएँ, उसमें से परिवार का कोई न कोई स्वरूप अवश्य निकल कर सामने आता है। यहाँ तक कि हिन्दू धर्मग्रंथों में इसके अनेक रूप निकल कर सामने आते हैं। जहाँ भगवान श्री गणेश की दो पत्नियों- रिद्धी तथा सिद्धी, चन्द्रदेव की पन्द्रह पत्नियों का उल्लेख मिलता है, वहीं भगवान शिव की पत्नी के रूप में माता पार्वती तथा भगवान विष्णु की पत्नी के रूप में माता लक्ष्मी का उल्लेख विद्यमान है जो क्रमशः बहु-विवाही (शबहुपत्नी-विवाहीश) परिवार तथा एक-विवाही परिवार का उचित उदाहरण है। तुलसी दास अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति श्रामचरितमानसश् में राजा दशरथ जी की तीन रानियों के विषय में लिखते हैं, साथ ही उन्हें एक संत के रूप में प्रतिष्ठित कर यह सिद्ध करते हैं कि आवश्यक नहीं कि बहु-विवाही परिवार का सम्बन्ध मात्र काम पूर्ति से हो। परिवार का यह स्वरूप उस काल में सर्वमान्य तथा अत्यन्त ही प्रतिष्ठित था।

### समाज की अवधारणा

साधारणतः समाज शब्द का प्रयोग एक से अधिक व्यक्तियों से निर्मित किसी विशिष्ट अन्तःसमूह के सन्दर्भ में किया जाता है। अति, सरल शब्दों में कहा जाय तो समाज एक स्थान पर रहने वाला अथवा एक ही प्रकार के कार्य करने वाले लोगों का दल, किसी

विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित समूह<sup>27</sup> है। परन्तु समाजशास्त्र इस परिभाषा से कहीं उपर उठकर व्यक्तियों अथवा प्राणियों के मध्य उत्पन्न होने वाले अन्तःक्रिया की एक जटिल प्रणाली के रूप में समाज को परिभाषित करता है। इसके अनुसार समाज अमूर्त है, यह वस्तु की अपेक्षा प्रक्रिया तथा मात्र संरचना की अपेक्षा एक गति है। प्रत्येक मनुष्य का एक निश्चित भूभाग पर वास्तव्य होता है, जहाँ वह अपने मूल आवश्यकताओं जैसे अन्न, वस्त्र, निवास आदि की पूर्ति तथा सुरक्षा एवं सृजन हेतु एक-दूसरे के सम्पर्क में आकर अपनी तथा दूसरों की इच्छा तथा क्षमता को ध्यान में रखकर, अपने रीति-रिवाज, अधिकार इत्यादि सम्बन्धों का नियमन करते हुए एक अत्यंत ही जटिल प्रक्रिया का निर्माण करता है। उसकी इस प्रक्रिया में आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विवाह, धार्मिक, आर्थिक आदि संस्थाओं का निर्माण होता है, जिनके संश्लिष्ट रूप को समाज कहा जा सकता है। कहा गया है पारस्परिक अदान-प्रदान पर आधृत संबंधों से उद्भूत समाज उन सभी संस्थागत तन्त्रों से व्यापक है जो विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में इकाइयों के रूप में अवस्थित रहकर मनुष्य को संगठनात्मक संश्लेषण में आबद्ध करते हैं।

### समाज का उद्भव और विकास

कई पुरातत्वविदों का मानना है कि पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत लगभग 3000 मिलियन वर्षों पहले हुई थी। मानव अपने सूक्ष्म अर्थात् उत्तक तथा आदिम स्वरूप से लेकर क्रमिक विकास के एक बहुत ही लंबी अवधि में कई चरणों को पार करते हुए आज जिस अवस्था तक पहुँचा है, वह अन्य जीवों पर निर्भरता के अतिरिक्त आपसी सहयोग के बिना संभव नहीं है। इसी विकास के दौरान जाने अनजाने समाज की रचना प्रारंभ हुई। हालांकि सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति तथा उसके के काल के सन्दर्भ में मानव विकास से संबंधित मौजूद अवशेषों तथा भारी मात्रा में उपलब्ध आकड़ों के अध्ययन के बावजूद ठीक ठीक कुछ भी कहा नहीं जा सकता। परन्तु सामान्य मान्यता है कि समाज का एक लघु स्वरूप शपरिवार<sup>28</sup> के रूप में प्रारंभ से ही विद्यमान था। खासकर शिकार तथा संग्रहण काल में मानव अपने परिवार के सदस्यों के साथ शिकार किया करता था। बाद में इसके लिए श्रम विभाजन तथा उसके आदान-प्रदान का दायरा परिवार के सदस्यों से बढ़कर दो अथवा उससे अधिक परिवारों और फिर दो अथवा उससे अधिक समुदायों के बीच बढ़ा।

## उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्त

विभिन्न समाजविदों ने अपने-अपने शोध कार्यों के आधार पर समाज की उत्पत्ति के अनेको सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं

### 1. ईश्वरीय सिद्धांत

यह समाज की उत्पत्ति का सबसे प्रारंभिक तथा सरल सिद्धांत था जिसके अनुसार यह माना जाता था कि समाज की सृष्टि किसी अदृश्य शक्ति अर्थात् ईश्वर ने किया है।

### 2. शक्ति अथवा बल संबन्धी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार यह माना जाता है कि आदिम काल के कुछ असाधारण रूप से शक्तिशाली पुरुष अन्य सह-पुरुषों को काबू में रखने में समर्थ थे तथा उन पर प्रभुत्व का इस्तेमाल करते थे, या यूँ कहें कि एक प्रकार से शासन किया करते थे। अतः दैहिक अवपीड़न ने उन्हें एक साथ रहने के लिए बाध्य किया जिससे समाज की स्थापना हुई।

## निष्कर्ष

परिवार तथा समाज सम्बन्धी व्याख्याओं से यह स्पष्ट है कि समाज की नींव हेतु मनुष्यों में एक समान उद्देश्य की अनिवार्यता होती है। माना जाता है कि लगभग ग्यारह से बारह हजार वर्ष पूर्व शिकार एक ऐसा उद्देश्य था जिसके लिए मनुष्यों को एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने एक समूह के रूप में शिकार के कार्य का प्रारंभ किया। यह सामाजिक व्यवस्था के उदय का पहला पायदान था। परिवार की व्यवस्था से कहीं आगे बढ़कर मनुष्यों ने परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त एक दूसरे का सहयोग लेना प्रारंभ किया। तत्पश्चात् कृषि की उत्पत्ति तथा विकास ने मनुष्य की खानाबदोसी पर पूर्णविराम लगाकर उसके निवास तथा जीवन को स्थायित्व प्रदान किया। मनुष्यों ने स्थायी निवास का निर्माण कर समुदायों के रूप में परस्पर सहयोग के साथ जीवन-यापन का प्रारंभ किया, जिसने ग्रामीण समाज की नींव रखी। औद्योगीकरण ने शहरी समाज का निर्माण किया। कालांतर में बदलते परिवेश, भौगोलिक दशाओं, मानव की बुद्धिमत्ता आदि ने विकास को इतनी गतिशीलता प्रदान की, कि पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था अपने अनेक रूपों में एक अत्यंत ही जटिल रूप से विकसित होकर आज भी गतिशील है।

## संदर्भ

1. कोठारी, सी। आर। (2004), वसवहल शोध पद्धतिय तरीके और तकनीक श्, नई आयु अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक, नई दिल्ली, भारत
2. कृष्णा अय्यर, वी.आर. (1915), श्लॉ फ्रीडम एंड चेंजश्, एफिलिएटेड ईस्ट वेस्ट प्रेस प्रा। लिमिटेड, नई दिल्ली।
3. कृष्णस्वामी ओ.आर. और रंगनाथम एम। (2009), व िमेथोडोलॉजी ऑफ रिसर्च इन सोशलसाइंस', हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
4. लीडर, ऐलेन (2004), ळसवइंस द फैमिली इन ग्लोबल पर्सपेक्टिव', सेज पब्लिकेशन लिमिटेड, लंदन, यूके।
5. पाउंड, आर। (2000), श्न्यायशास्त्रश्, लॉबुक एक्सचेंज लिमिटेड, न्यू जर्सी, यूएसए।
6. राय, के। (2010), शभारत का संवैधानिक कानूनश्, 9 वां संस्करण, केंद्रीय कानून प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. सिंह, बी.आर. (2011), शभारतीय परिवार प्रणालीश्, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (पी) लिमिटेड, नई दिल्ली।
8. अमातो, पी। (1993)। तलाक के लिए बच्चों का समायोजनरू सिद्धांत, परिकल्पना और अनुभवजन्य समर्थन। विवाह और परिवार की पत्रिका, 55, 23-38।
9. अहलूवालिया, मॉंटेक सिंह, 2001, रोजगार के अवसरों पर टास्क फोर्स की रिपोर्ट, नई दिल्लीरू योजना आयोग, भारत सरकार (जुलाई)।
10. एंडरसन, माइकल आर।, 1993, शइस्लामिक कानून और ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक मुठभेड़श्, डेविड अर्नोल्ड और पीटर रॉब (सं।), संस्थानों और विचारधाराओं मेंरू एक एसओएस साउथ एशिया रीडर, लंदनरू करजल प्रेस लिमिटेड। पीपी। 165-185।
11. भट्टाचार्य, प्रकाश, 2002, पदबवउम वृद्धावस्था आय सुरक्षारू इंडी ए परिप्रेक्ष्य श्, बीमा क्रॉनिकल (जुलाई)।
12. बेंगटसन, वी.एल., और रॉबर्ट्स, आर.ई. (1991), एजिंग फैमिलीज में इंटरगेंनेरेशनल सॉलिडैरिटीरू फॉर्मल थ्योरी कंस्ट्रक्शन का एक उदाहरण, जर्नल

ऑफ मैरिज एंड द फैमिली, वॉल्यूम। 53, पीपी 856-  
870

---

**Corresponding Author**

**Mamta Kumari\***

Research Scholar, Venkateshwar University, Gajraula  
(UP)